



Pratidhwani the Echo

A Peer-Reviewed International Journal of Humanities & Social Science

ISSN: 2278-5264 (Online) 2321-9319 (Print)

Impact Factor: 6.28 (Index Copernicus International)

Volume-III, Issue-IV, April 2015, Page No. 4-9

Published by Dept. of Bengali, Karimganj College, Karimganj, Assam, India

Website: <http://www.thecho.in>

हिन्दू-संस्कृति में ईश्वर का स्वरूप

Dr. Ranjeet Kumar Tiwary

Assistant Professor, Dept. of Sanskrit, Women College, Silchar, Assam

Abstract

The existence of God is supported by our believe system as well as tradition and cultures. God is spiritual entity formless all pervading. A man becomes a spiritual being which establishes a spiritual connection with God (Ishvara). He offers tries to connect following certain holy and sacred rituals. Hinduism postulates the real existence of Brahman. Brahman is conceived as personal, impersonal or supreme, pure consciousness, indivisible, incorporeal, and infinite subject to the different philosophical school. The Hindu scriptures identify that the knowledge of a indistinct Brahman is not as easy to understand for the Jivatman as they identify Brahman in solid form to visualise. It can be worshiped in any form. That's why sage Yajnavalkya described brahman as *neti-neti* (not this, not this) to his disciples.

Hinduism is not just the religion but the real method of teaching the Self. As we all aware about Hinduism, it has number of ways to proof the existence of God and the nature of God depending on Sanskrit scriptures, mythology etc. In the present paper, it has been tried to identify the concept and nature of God in different branches of Indian Philosophy as well as Sanskrit scriptures and mythology.

Keywords: Hinduism, Sanskrit, Brahman, Ishvara, Maya, Truth, Values

संस्कृत भाषा भारतवर्ष की प्राचीनतमा भाषा है। इस भाषा के साहित्य एवं दर्शन विश्व मानविकी का अनमोल संपद है। भारतीय संस्कृति, संस्कृत भाषा में संग्रहित प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में संरक्षित आज विश्वमानव कल्याण में पथप्रदर्शक है। संस्कृत भाषा एवं अपनी विशाल संस्कृति के कारण ही तो भारत की प्रतिष्ठा इस विश्व परिवार में है। भारतीय संस्कृति आत्मसन्तुष्टा, अध्यात्मनिष्ठा एवं लोकल्याणकारिणी है। यह संस्कृति ही भारतभूमि को पुण्यभूमि के रूप में व्याख्यायित करती है। संतोष पूर्वक जीवन-यापन, त्याग एवं सादगी का मन्त्र, अपने समान ही दूसरे को भी समझने तथा उसके प्रति आचरण करने का उपदेश हमें अपने विशाल एवं समृद्ध संस्कृत शास्त्र से प्राप्त होते हैं। वेदानुसारी आर्ष धर्म-ग्रन्थों के अनुकूल लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय एवं निश्चयसोपयोगी व्यापार ही मुख्य संस्कृति है और वही हिन्दु-संस्कृति, वैदिक संस्कृति और भारतीय संस्कृति है।

शरीर के अपेक्षा आत्मा का विशेष महत्व, अहङ्कार का त्याग, कर्तव्याकर्तव्य का विवेकपूर्वक सदाचरण, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थों के लिये नीतियों का पालन एवं मनुष्य से परे एक परम सत्ता जो अखण्ड ब्रह्माण्ड का नायक है, जिसे शास्त्र ईश्वर के नाम से संज्ञायित करते हैं- उसमें अटूट विश्वास ही हमारी हिन्दू संस्कृति का मूल है। प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृत वाङ्मय में ईश्वर विषयक विवेचन करने का प्रयास किया गया है। ईश्वरवाद, निरीश्वरवाद, भारतीय दर्शनों में ईश्वर का स्वरूप आदि की विशद विवेचन न करते हुए मात्र ईश्वर संबन्धी कुछ मन्तव्यों की समीक्षा करने की चेष्टा की गयी है। आधुनिकीकरण, बाज़ारीकरण एवं उपभोक्तावादी के इस युग में मूल्यों का क्षरण अत्यन्त ही तीव्रता से होता हुआ नज़र आ रहा है। मानव में बढ़ती हुई असंवेदनशीलता, कर्तव्याकर्तव्य विवेक का गला घोट रही है। प्रति-दिन लूट, हत्या, बलात्कार, संप्रदायिक तनाव बढ़ रहे हैं, अलगाववाद, प्रान्तीयता, भाषावाद के विष-बीज पनप रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में ईश्वर ही किसी भी व्यष्टि या समष्टि की रक्षा करने में समर्थ है। ईश्वर-भक्ति नैतिकता सिखाती है। समरसता, सामञ्जस्य एवं आत्मीयता जैसे मूल्य ईश्वर के ऊपर विश्वास मात्र से आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।¹

अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड-चेतन स्वरूप जगत् है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। भगवान् मनु ने कहा जो मुझसे भी अतिसूक्ष्म और सबका भली प्रकार शासन करने वाला है एवं स्वर्ण के समान उज्ज्वल और निर्मल तथा स्वप्नकाल में भी बुद्धिद्वारा प्रत्यक्ष होने वाला है, उस परम पुरुष परमेश्वर को जानना चाहिये। वही ब्रह्म है। यही सम्पूर्ण प्राणियों को पञ्चभूत स्वरूप पाँच मुर्तियों के द्वारा व्याप्त किये हुए हैं तथा जन्म, वृद्धि और क्षय के द्वारा निरन्तर समस्त प्राणियों को चक्र की भान्ति घुमा रहा है।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयान्समणोरपि।

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यातं पुरुषं परम् ॥

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिव्याप्य मूर्तिभिः ।

जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥²

ईश्वर की सत्ता वास्तविक, असाधारण तथा पारमार्थिक है। विश्व का कारण या आधार है। महर्षि व्यास ने कहा - इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति, संहार आदि जिससे होते हैं, वही ईश्वर है। 'जन्माद्यस्य यतः'³।

योगसूत्र में कहा गया - ईश्वर के प्रणिधान से निकटतम समाधि होती है। योगदर्शन का मुख्य प्रयोजन समाधि की प्राप्ति है और यह समाधि ईश्वर के प्रणिधान से भी होने के कारण योगदर्शन में ईश्वर का महत्व बढ़ जाता है। यहाँ प्रणिधान से उपासना अभिप्रेत है। क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से जो स्पर्शातीत है ऐसा पुरुष विशेष ईश्वर है। अर्थात् जिसके ऐश्वर्य से न तो बड़ा किसी का ऐश्वर्य है और नहीं उसके बराबर ही, ऐसा ऐश्वर्यशाली जहा ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है, वही ईश्वर है। उस ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज निरतिशय है। ईश्वर कालातीत है। काल उसके नियन्त्रण में है, काल के नियन्त्रण में वह नहीं इसलिये वह गुरुओं का भी गुरु था और है भी। उस ईश्वर का वाचक प्रणव अर्थात् ॐ है। व्यासभाष्य में कहा गया है - ॐ परमात्मा का नाम है तथा इस नाम के साथ परमात्मा का नित्य संबन्ध है। अर्थात् सर्ग-सर्गान्तरों में उसका यही नाम स्थिर रहता है। ॐ का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना ही प्रणिधान कहलाता है। इस जप के माध्यम से ईश्वर का चिन्तन, चित्त को एकाग्र कर देता है। ॐ के जप को स्वाध्याय नाम दिया गया है। जिससे स्वाध्याय और योग की सिद्धि से परमात्मा प्रकाशित होते हैं। अत एव योग के आदि और अन्त में ॐकार का जप आवश्यक है। ईश्वर प्रणिधान से अपने स्वरूप का ज्ञान भी होता है एवं विघ्नो का अभाव भी।⁴ महाभारत में कहा गया है -

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः।

जङ्गमाजङ्गम् वेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥⁵

अर्थात् समस्त ऋषिगण, पितृगण, देवगण और अन्यान्य प्राणिवर्ग तथा समस्त प्रकृतिया - यह सम्पूर्ण जड-चेतनात्मक जगत् नारायण से ही उत्पन्न हुआ है। विष्णुपुराण में कहा गया है -

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः।

सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्वविच्च समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥⁶

श्रीमद्भगवद्गीता कहती है-

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।

यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययस्य ईश्वरः ॥⁷

अर्थात् इन दोनों से अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा - इस प्रकार कहा गया है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥⁸

हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्र में आरूढ हुये सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है। श्री भागवतकार कहते हैं -

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेऽश्वभिग्यः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदा च आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहुकं सत्यं परं धीमहि ॥⁹

जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, जो अन्वय और व्यतिरेक - दोनों प्रकार से सत्य है अर्थात् जिसकी सत्ता से ही जगत् की सत्ता है, परन्तु जगत् के न रहने पर भी जिसका अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है ; जो जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त और सर्वज्ञ है तथा अखण्ड, अबाध ज्ञानसम्पन्न होने के कारण जो स्वयं प्रकाश है; सर्ग के आदि में ही जो अपने संकल्प से ही ब्रह्मा के हृदय में उन वेदों का ज्ञान प्रदान किया है, जिनके संबन्ध में बड़े-बड़े ऋषि मुनि मोहित हो जाते हैं ; जिसके सत्य स्वरूप में यह त्रिगुणमयी सृष्टि उसकी सत्ता से सत्य है, परन्तु भिन्न - भिन्न नामरूपों की दृष्टि से असत्य भी है - जैसे तेजोमय सूर्य के किरणों से काँच आदि मृत्तिका के विकारों में जल की और जल में स्थल की भ्रान्ति हो जाया करती है ; जिसके आने से ज्ञानमय प्रकाश से माया - छल-कपट आदि सदा ही निरस्त रहते हैं, उस परम सत्य स्वरूप परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं।

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णा संतत्य वक्त्रतः।
तथा त्रिहित्य भूयस्तां ग्रस्त्येवं महेश्वरः॥¹⁰

जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट में से मुख द्वारा तन्तुओं को निकाल कर उनको फैलाती है और उसके साथ विहार करके उसे पुनः निगल जाती है, उसी प्रकार सर्वेश्वर परमात्मा भी जगत् रचना करके तथा उसमें विहार करके पुनः अपने में उसे लीन कर लेते हैं।

अजोऽपि सन्नव्यात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥¹¹

मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ। हे भारत ! जब जब धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती होती है तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ। अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिये और धर्म को अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

ईश्वर सर्वश्रेष्ठ मूल्य है अर्थात् उससे बढ़कर मूल्यवान पदार्थ कोई नहीं है। वही परम शुभ तथा परम सुन्दर है अतः वह जीवन का सर्वोच्च आदर्श और परम साध्य है। वह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ अनन्त, असीम, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायप्रिय, शुद्ध, बुद्ध, एवं विशिष्ट गुणों से युक्त है।

भारतीय दर्शन में नैयायिकों ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये नौ प्रमाणों को प्रतिपादित किया है - कार्यत्व, आयोजन, धृति, विनाश, व्यवहार, प्रामाण्य, श्रुति, वाक्यत्व और संख्या विशेष।

न्याय कुसुमाञ्जलि में उदयन ने कहा है -

कार्यायोजन-धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात् संख्या-विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥¹²

जगत् के समस्त पदार्थ परमाणुजन्य, सावयव तथा अवान्तर महत्व-विशिष्ट हैं। उनका मानना है कि सृष्टि की प्रक्रिया निरन्तर प्रति क्षण चल रही है। नैयायिकों ने इसी प्रकार ईश्वर को कर्म फलदाता के रूप में मानने के साथ-साथ पुनर्जन्म तथा अदृष्ट के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है। अदृष्ट भी कर्मफल का साधन है, किन्तु अचेतन अदृष्ट कर्मफल का दाता नहीं है। अतः यहाँ भी कार्य का कारण ईश्वर ही है।

आयोजन का अर्थ होता है - सम्पादन। जगत् के समस्त पदार्थ संमिश्र या मिश्रित है। वस्तु के निर्माण के लिये निर्माता की आवश्यकता होती है। सृष्टि के निर्माण के परमाणु रूपी उपादान या सामग्री अनादि काल से ही विद्यमान है किन्तु सामग्री स्वयं सृष्टि रूपी भवन नहीं बन सकती। अतः सृष्टि के निर्माता के रूप में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना आवश्यक है। किसी पदार्थ के निर्माण के उपरान्त स्वभावतः यह प्रश्न उठना लाज़िमी है कि यह पदार्थ अपनी देख-भाल कर सकेगा या किसी चेतन तत्त्व को उसकी देख-भाल करने की आवश्यकता पड़ेगी। न्यायकुसुमाञ्जलिकार के मतानुसार केवल जगत् की आदि सृष्टि के लिये नहीं अपितु उसके अधिष्ठान के लिये भी चेतन शक्ति की आवश्यकता है। जगत् को धारण करने की आवश्यकता के कारण इसे धृति कहा गया है। चौथी युक्ति स्वयं श्रुति है। भारतीय दर्शनो में श्रुति अथवा शब्द प्रमाण को आप्त वचन के नाम से भी जाना जाता है। श्रुति का ज्ञान हमें ईश्वर की सर्वशक्तिमानता, सर्वव्यापकता, सृष्टिकर्ता, सब प्राणियों का अन्तरात्मा, नियामक, रक्षक आदि रूपों को प्रमाणित करने में सहायक सिद्ध होता है।

पाँचवा प्रमाण संख्या-विशेष है जिसे विशेष संख्या या समूह आदि नामों से संकेतित किया जाता सकता है। सान्सारिक पदार्थों में, आयोजन अथवा मेल होता है। ऐसे समूहों के निर्माण में दो बातें हो सकती हैं - (क) समग्र में बिना किसी क्रम के, ईकाइयों मिलकर अनेक समूह बना दे, या (ख) यह मेल किसी क्रम से हो। आचार्य उदयन का मत है कि यह संयोग अथवा आयोजन क्रम के अनुसार होता है। परमाणुद्वय के संयोग से द्व्यणुक या जोडा बनता है। सामान्यतः नियम की स्थिति में सम्भवतः यही नवीन वैज्ञानिकों का भी मत है। यह द्वित्व संख्या अपेक्षा बुद्धि के द्वारा उत्पन्न होती है जो चेतन व्यक्ति के द्वारा ही निष्पन्न हो सकती है। अतः यहा द्व्यणुको में संख्या की उत्पत्ति ईश्वर की सत्ता प्रमाणित करती है।

नैयायिकों के समान ही वैशेषिक दर्शन भी अनुमान के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। ईश्वर का शरीर होता है की नहीं ? यदि है तो किस प्रकार का ? इस प्रश्न के उत्तर में काफी मतभेद है। अधिक ग्रन्थकारों का मत है कि ईश्वर का शरीर नहीं होता। शरीर उत्पन्न होता है आत्मा के धर्माधर्म से, किन्तु ईश्वर में धर्माधर्म नहीं होता।¹³ अन्य ग्रन्थकारों के मत में संसारी जीवों के धर्माधर्म से ईश्वर का शरीर बनता है और इसीलिये उनका अवतार भी होता है। किसी के मत में परमाणु और किसी के मत में आकाश ही ईश्वर का शरीर है।¹⁴

रामानुज के अनुसार ईश्वर ही एक मात्र परम तत्त्व है। वह स्वयं सगुण ब्रह्म और सविशेष है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम, नित्य एवं अनन्त है। ईश्वर, जीव और जगत् सभी सत् है, इनमें से किसी को भी असत् नहीं कहा जा सकता। ईश्वर में स्वगत भेद है। वह भेद में अभेद है। सत्, चित् तथा आनन्द उसके अनेक गुणों अथवा विशेष गुणों में से ही है। इसके अलावा अचेतन भी उसी का ही रूप है। ईश्वर एवं ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। ईश्वर ही ब्रह्म है, वह सत्य है, प्रपञ्च नहीं। ईश्वर अपने ब्रह्म रूप में ही विश्व का उपादान एवं निमित्त कारण है। समस्त संसार उसका शरीर है, किन्तु वह जगत् के दोषों से रहित है। उसे जीवों का अन्तर्यामी और स्वामी कहा जाता है। जीव उसका शरीर है। विशिष्टाद्वैत का ईश्वर व्यक्तित्ववान पुरुष है और वैकुण्ठ जैसे स्थानों में रहने वाला है। रामानुज ने विष्णु को ईश्वर के रूप में स्वीकार किया है और लक्ष्मी को उसकी सृजन शक्ति का मूर्त रूप माना है। लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी तथा जगत् की जननी भी कहा है। उनका मानना है कि ईश्वर का जीव, प्रकृति और काल आदि से अपृथक्सिद्ध संबन्ध होता है, फिर भी ईश्वर जीव, प्रकृति, काल आदि से पृथक् है, उसके गुण शेष जड और अजड पदार्थों से भिन्न है। उसकी उपासना करने पर वह जीवों को अपने अनुग्रह से मोक्ष प्रदान करता है।¹⁵

ईश्वर के भक्त तो ईश्वरवाद का अर्थ तो बस इतना जान कर उसका अनुभव करने की चेष्टा करते हैं कि - यह अत्यन्त निर्मल दुष्प्राप्य निर्मल ज्ञान, जो की सखा भगवान नारायण ने देवर्षि नारदजी को बतलाया था, भगवान के अकिञ्चन अनन्य भक्तों के चरण-कमलों की धुली सर्वाङ्ग में लगाने वाले को ही प्राप्त होता है।¹⁶ ठीक इसी तरह की भावना का इज़हार करते हुए सुफी सन्त जलालुद्दीन रूमी¹⁷ ने लिखा -

मेरे रोम-रोम मे पैठा, प्रियतम ! प्रेम तुम्हारा ।

तनके तार - तार मे धावित उसकी विद्युत्-धारा ॥
 मैं हूँ मुरली एक अधरपर, मोहन धरी तुम्हारे ।
 मैं हूँ तुम्हारे उर पर पडा विपन्जी, प्यारे ॥
 ऐसा स्वर मुरली मे फूको, आह उठे अन्तर से ।
 ऐसा तारों को झनकारो, नयन हमारे बरसे ॥

प्रेम, भक्ति मे करुण पुकार होती है, वैसी पुकार जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने अपने सर्वज्ञ गुरुदेव रामकृष्ण परहन्स के सम्मुख करुण पुकार की थी -

कत दिने हबे से प्रेम संचार ।
 हये पूर्णकाम, बलबो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम अश्रुधार ॥
 कबे हबे आमार शुद्ध प्राण मन, कबे जाब आमि प्रेमेर वृन्दावन ।
 संसार बन्धन हइबे मोचन, जानाञ्जने जाबे लोचन-आधार ॥
 कबे परशमणि करि परशन, लोहमय देह हइबे काञ्चन ।
 हरिमय विश्व करिब दर्शन, लुटाइब भक्तिपथे अनिवार ॥
 कबे जाबे आमार धर्म-कर्म, कबे जाबे जाति-कुलेर मर्म ।
 कबे जाबे आमार भय-भावना-श्रम, परिहरि अभिमान लोकाचार ॥
 माखि सब अङ्गे भक्त-पद-धूलि, काधे लये चिर वैराग्येर झूलि ।
 पिब प्रेमवारि दुइ हाथ तूली अञ्जलि अञ्जलि प्रेम यमुनार ॥
 प्रेम-पागल हये हासिब-कादिब, सच्चिदानन्द-सागरे भासिब ।
 आपनि मातिये, सकले माताब, हरिपदे नित्य करिब बिहार ॥¹⁸

शरणागति एवं समर्पण भावना को प्रदर्शित करते हुये श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं -

मुझमे न प्रेमा भक्ति है, न श्रवणादि गौणी भक्ति है, न वैष्णव योग है, न ज्ञान प्राप्त है, न मैंने कोई भी शुभ कर्म किये हैं, मेरी जाति भी अच्छी नहीं है, इस प्रकार अत्यन्त हीन मुझ साधक को यह अच्छेदय जडवाली होने के कारण माया, हे गोपीजन वल्लभ ! तुम्हारे रहते ही हाय, हाय, निरन्तर कष्ट देती है। ईश्वर की प्रासंगिकता से संदर्भित मन्त्र कठोपनिषत् में प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है - जिस मनुष्य ने बुरे आचरणों का त्याग नहीं कर दिया है, जिसका मन शान्त नहीं है, जिसका चित्त एकाग्र नहीं है तथा जिसने मन, बुद्धि को वश में नहीं कर लिया उसको प्रज्ञान - सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।¹⁹ अर्थात् अपना व्यक्तित्व विकास, सामाजिक क्षेत्रों में नैतिक आचरण, इन्द्रियजयता आदि की प्राप्ति मात्र ईश्वर में विश्वास एवं भगवद् आराधना के द्वारा ही संभव है। वाल्मीकि रामायण में सत्य को ही ईश्वर स्वीकार करते हुए कहा गया है - जगत् मे सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्य के आधार पर ही धर्म की स्थिति रहती है -

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।²⁰

श्रीमद्भागवत मे स्पष्टतया उपदेश प्राप्त होता है कि जिसके मन में कोई कामना नहीं है, या जो सब कुछ पाने की कामनावाला है अथवा जो उदारबुद्धि पुरुष केवल मोक्ष की ही कामना रखता है, उन सबको तीव्र भक्तियोग के द्वारा परम पुरुष भगवान श्री हरि की ही उपासना करनी चाहिये।²¹ समस्त जीव-जगत् जड-चेतन से प्रेम तथा सद्भाव के लिये कहा गया कि जो अभिमानी और भेददर्शी है, जिसने सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैर बाध रखा है, अतएव जो दूसरे के शरीर में स्थित अनतर्यामी परमात्मा से द्वेष रखता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिलती है।²² समस्त सृष्टि के चराचर प्राणियों में ईश्वर ही अपने अन्शभूत जीव के रूप में प्रवेश किया है, यह विचार सर्वदा मनुष्य के मन में अधिष्ठित होना चाहिये तथा तदनु रूप आचरण करना चाहिये। क्योंकि वह व्यापक प्रभु सब प्रजाओं मे ओतप्रोत है²³ तथा उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण लोक स्थित है।²⁴

अतः सारान्शतः कह सकते हैं कि इस सृष्टि के उत्पादक, पालक, रक्षक आदि जो कोई भी है - वही चेतन, सर्वशक्तिमान, कृपालु, दयासागर परमात्मा है, ईश्वर है। आस्तिक होना, ईश्वर में विश्वास करना, अपनी पूजा पद्धति के अनुसार उपासना करना अन्धविश्वास या ईश्वर के प्रति भय नहीं अपितु सदाचरण पूर्वक अपने कर्तव्यों को स्मरण रखना एवं इस विशाल सृष्टि के प्रति सद्भाव की दृष्टि ही सच्ची ईश-भक्ति होती है। यही हिन्दू संस्कृति का सनातन संदेश है।

सन्दर्भ-सूची

1. यजुर्वेद, 40/1
2. मनुस्मृति, 12/122,124
3. ब्रह्मसूत्र, 1/2
4. तिवारी रणजीत कुमार, भारतीयदर्शने शास्त्रार्थविचारपद्धतिः, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ. सं. - 36
5. महाभारत, अनुशासन पर्व- 149/138
6. विष्णुपुराण, 6/5/86
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 15/17
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/61
9. श्रीमद्भागवत,
10. श्रीमद्भागवत, 11/9/21
11. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/6-8
12. कुसुमाञ्जलि, 5/1
13. न्यायकन्दली, पृ. सं.- 56
14. उपाध्याय बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1997, पृ. सं. - 599
15. मिश्र अर्जुन, दर्शन की मूलधाराएँ, मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1997 पृ. सं.- 310
16. श्रीमद्भागवत, 7/6/27
17. हिन्दू संस्कृति अड्डक , कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2064, पृ. सं.- 136
18. श्रीरामकृष्णपरमहंसकथामृत (बङ्गला), पहला भाग
19. कठोपनिषद् 1/2/24
20. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 109/13
21. भा., 2/3/10
22. भागवत, 3/29/34
23. यजुर्वेद, 32/8
24. यजुर्वेद, 31/19